

विदेशों में बसे भारतीय वैज्ञानिकों से ही उम्मीद क्यों?

पी. बालाराम

ऐसा एक दिन भी नहीं गुज़रता होगा जब हमारे नीति-नियंता युवा भारतीयों की बढ़ती महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए विश्वविद्यालय प्रणाली में नाटकीय विस्तार की बात न करते होंगे। विश्वविद्यालय प्रणाली के विस्तार की ज़रूरत को व्यापक पैमाने पर स्वीकार भी कर लिया गया है। इस सिलसिले में पहला कदम भी उठा लिया गया है। देश के अनेक स्थानों पर नए आईआईटी, आईआईएम, आईआईएसईआर, केंद्रीय विश्वविद्यालय और अनेक निजी संस्थान खोले जा रहे हैं।

पुराने संस्थान भी इस विस्तार की पीड़ा से गुज़र रहे हैं। अनेक समस्याओं से ग्रस्त हमारी विश्वविद्यालय प्रणाली की कई नई योजनाओं में और पैसा उड़ेलना जा रहा है। नए संस्थानों में फैकल्टी की भर्ती और मौजूदा संस्थानों में फैकल्टी के विस्तार के लिए उपयुक्त लोगों की कमी का मुद्दा बार-बार चर्चाओं में आता है।

1950 और 1960 के दशक में जब भारत वैज्ञानिक और तकनीकी संस्थानों के विस्तार के प्रथम चरण की ओर प्रस्थान कर रहा था, उस समय फैकल्टी कहां से आई थी? तब भर्ती हुए लोगों में से अधिकांश वे थे, जिन्होंने पश्चिमी देशों में शिक्षा पाई थी। हालांकि उनमें कुछ बढ़िया लोग वे भी थे, जो भारत में ही पढ़े-बढ़े थे। ऐसे विद्वान लोगों की वह पीढ़ी आज परिदृश्य से लगभग गायब हो चुकी है, जिन्हें देश के मौजूदा संस्थानों के निर्माण का श्रेय दिया जाना चाहिए। लेकिन दुर्भाग्य से आज़ादी के बाद शुरूआती दो दशकों में इन संस्थानों ने जो वादे किए थे, उन पर सारे संस्थान खरे नहीं उतरे हैं। ये संस्थान उस दौर के उत्साह और आशावाद को बनाए नहीं रख सके।

एक बड़ा सवाल यह है कि हम आज फैकल्टी की कमी की समस्या का सामना कैसे करेंगे? एक सर्वसम्मति यह है कि हमें अन्य देशों में रह रहे अपने विद्यार्थियों और शिक्षकों, जिनमें से अधिकांशतः अमरीका में रह रहे हैं, को इस बात

के लिए मनाना चाहिए कि वे भारत लौटकर यहीं शोध और शिक्षण में अपना कैरियर बनाएं।

इसीलिए मेरा ध्यान एक रिपोर्ट पर गया जो टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज़ मुंबई, पेन स्टेट युनिवर्सिटी और रट्जर्स से जुड़े विद्वानों ने संयुक्त रूप से तैयार की थी। 'विल दे रिटर्न?' नामक यह रिपोर्ट भारत लौटने के इच्छुक शिक्षकों और उनके निर्णय को प्रभावित करने वाले प्रमुख तथ्यों पर केंद्रित है।

इस रिपोर्ट के लेखकों ने अपने विश्लेषण की शुरुआत फिक्की की एक रिपोर्ट 'मेकिंग दी इंडियन हायर एजुकेशन सिस्टम फ्यूचर रेडी 2010' के आधार पर की। उन्होंने फिक्की के उन आंकड़ों का इस्तेमाल किया जिनके अनुसार भारत को 2020 तक 800 नए विश्वविद्यालयों और 41 हजार कॉलेजों की दरकार होगी। वर्तमान में देश में 506 विश्वविद्यालय और 26 हजार कॉलेज हैं। इन लेखकों का मानना है कि इस अति महत्वाकांक्षी लक्ष्य की पूर्ति में सबसे बड़ी बाधा उच्च डिग्रियों वाले योग्य शिक्षकों के अभाव की रहेगी। विश्वविद्यालयों को पीएचडी धारकों की ही भर्ती फैकल्टी के तौर पर करनी चाहिए। यहां तक कि अगर स्नातक कॉलेज भी पीएचडी धारकों को फैकल्टी के रूप में रखेंगे तो शोध की दृष्टि से वह फायदेमंद रहेगा। रिपोर्ट के लेखक वेंकटेश कुमार और अन्य, फैकल्टी की कमी का अनुमान लगाते हुए कहते हैं कि भारत में पीएचडी धारकों के निर्माण की जो गति है, उससे हमारे शैक्षणिक क्षेत्र की मांग की पूर्ति शायद ही हो पाए। लेकिन सच तो यह है कि हमारे अच्छे संस्थानों में तैयार पीएचडी धारकों को भी संस्थागत बाध्यताओं के चलते अच्छे अकादमिक पद हासिल करने में दिक्कत आती है। इस विश्लेषण में इन बाध्यताओं का कोई विश्लेषण नहीं किया गया है।

लेखकगण सुझाव देते हैं कि, 'यह बहुत अहम है कि भारत उन हज़ारों भारतीयों में से कुछ को तो वापस देश

आने के लिए प्रोत्साहित करे जो दशकों पहले उच्च डिग्री हासिल करने के लिए विदेश चले गए थे।' प्रश्न आधारित सर्वे समाज विज्ञान के अध्ययनों का मूल होता है। रट्जर्स के अध्ययन में विदेशों में मौजूद या हाल ही में वहां गए 998 विद्यार्थियों के जवाबों का इस्तेमाल किया गया था। अध्ययन के लेखकों ने बताया कि जिन विद्यार्थियों का सर्वे किया गया, उनमें से दो तिहाई वे थे जो अभी वर्तमान में विदेशों में पढ़ाई कर रहे थे - 40 फीसदी स्नातकोत्तर और 26 फीसदी पीएचडी में अध्ययनरत, तथा आठ फीसदी पोस्ट डॉक्टरल डिग्री पूरी कर रहे थे। उम्मीद के मुताबिक इस सर्वे में शामिल लोगों में से तीन-चौथाई (73 फीसदी) पुरुष थे। मज़ेदार बात यह है कि इनमें भी एक बड़ी संख्या (85 फीसदी) 30 साल से कम उम्र के विद्यार्थियों की थी। सर्वे के प्रतिभागियों के आयु सम्बंधी व शैक्षणिक प्रोफाइल के चलते इस महत्वपूर्ण अध्ययन की प्रासंगिकता पर सवाल खड़े किए जा सकते हैं।

राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं में अकादमिक फैकल्टी और शोधकर्ताओं के पदों पर अधिकांश उन भारतीयों को लिया जाता है जो अमरीका में पोस्ट डॉक्टरल अनुसंधान में संलग्न होते हैं। इनमें से अधिकांश 30 साल की उम्र पार कर चुके होते हैं। अध्ययन में इस समूह का प्रतिनिधित्व बहुत कम हुआ है। अध्ययन में शामिल अधिकांश स्नातकोत्तर विद्यार्थी इस स्थिति में नहीं होंगे कि उन्हें निकट भविष्य में फैकल्टी के तौर पर नियुक्त किया जा सके। इंजीनियरिंग के विद्यार्थियों में केवल 24 फीसदी पीएचडी या पोस्ट-डॉक्टरल कर रहे थे, जबकि विज्ञान के विद्यार्थियों में यह संख्या 79 फीसदी थी। सर्वे में इंजीनियरिंग के विद्यार्थियों की संख्या (478) विज्ञान के विद्यार्थियों की संख्या (98) से कहीं अधिक थी। अधिकांश विद्यार्थियों ने अध्ययन करने के लिए अमरीका जाने की बड़ी वजह 'उच्च गुणवत्ता की शिक्षा' और 'उन्नत अनुसंधान' बताई। कुछ मुट्ठीभर विद्यार्थी ही ऐसे थे, जिन्होंने अच्छी नौकरी और वहीं बसने की अभिलाषा को अमरीका में अध्ययन की प्रमुख वजह बताया। अधिकांश प्रतिभागियों (74 फीसदी) ने संकेत दिए कि वे अंततः भारत लौटना चाहेंगे। अध्ययन के लेखकों ने इसे भारतीय नीतिकारों के

लिए एक उत्साहवर्धक खबर बताया।

सर्वे का उद्देश्य यह जानना था कि फैकल्टी में भर्ती योग्य कितने विद्यार्थी भारत लौटने के इच्छुक हैं। दुर्भाग्य से सर्वे में जिस तरह का नमूना लिया गया, उससे तो उसका मकसद पूरा होता प्रतीत नहीं होता। विज्ञान की डिग्री लेने वाले केवल 36 फीसदी और इंजीनियरिंग की पढ़ाई करने वाले 16 फीसदी विद्यार्थियों ने ही पक्के तौर पर संकेत दिए कि वे भारत लौटना चाहते हैं। बड़ी तादाद ऐसे विद्यार्थियों की थी जो अनिर्णय की स्थिति में थे। इस सर्वे में उन मुख्य कारकों की भी विवेचना की गई जिनकी वजह से विद्यार्थी अमरीका में ही रहना चाहते हैं। इनमें तीन सबसे बड़े कारण ये गिनाए गए - भ्रष्टाचार, लालफीताशाही और अकादमिक माहौल। अमरीका से वापस लौटने के इच्छुक विद्यार्थियों ने ये कारण गिनाए - पारिवारिक हालात, अपनी मातृभूमि को कुछ वापस लौटने की भावना और भारतीय समाज/संस्कृति के साथ सहजता। कई प्रतिभागियों ने भारतीय उच्च शिक्षा में योगदान करने की इच्छा जताई।

लेखकों ने इन विद्यार्थियों को वतन लौटने के प्रति आकर्षित करने के सम्बंध में कई सुझाव भी दिए हैं। एक बहुत ही दिलचस्प सुझाव जिसने मेरा ध्यान खींचा, वह यह था कि 'टीच फॉर इंडिया' नाम से उच्च शिक्षा की एक फेलोशिप शुरू की जाए जिसमें अनुसंधान करने का अवसर भी मिले। उम्रदराज़ भारतीय अकादमिक लोगों को अपने वतन लौटने के लिए आकर्षित करने की राह सुझाते हुए लेखकों का मानना है कि अमरीका में नए स्नातकों के लिए और भी रास्ते खोलने का फायदा देश को ही होगा। पर्याप्त शोध सुविधाओं का अभाव और कमज़ोर प्रशासन अधिकांश प्रतिभागियों की मुख्य चिंता थी।

चीनी-अमरीकी वैज्ञानिकों को अपने वतन लौटने के लिए मनाने में चीन बेहद आक्रामक रवैया अपना रहा है। वहां उन उच्च दक्षता वाले शोधकर्ताओं की खोजबीन का एक संगठित अभियान चलाया जा रहा है जिन्हें वापस लौटने को मनाया जा सकता है। उनके सामने इस तरह के प्रलोभन और फायदों की पेशकश की जा रही है कि उनसे पश्चिमी देशों के श्रेष्ठ वैज्ञानिक भी आकर्षित हो सकते हैं।

हाल ही में प्रकाशित एक रिपोर्ट इस सम्बंध में बढ़ती समस्या की ओर ध्यान आकर्षित करती है। यह रिपोर्ट कहती है कि 'विदेशों में कार्यरत प्रतिभाओं को ऊंचे वेतनों पर भर्ती करने से तयोरियां चढ़ गई हैं' (हाओ जिन, साइंस, 2011)। नोबेल व अन्य प्रतिष्ठित अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार जीतने पर इनाम की राशि 15 करोड़ यूआन यानी 2.30 करोड़ डॉलर रखी गई है। ऐसे दस लोगों को इनाम देने का लक्ष्य तय किया है। चीन के प्रमुख वैज्ञानिकों को ऐसी सुविधाएं मिलेंगी जो किसी युरोपीय फुटबॉल खिलाड़ी या भारतीय क्रिकेट स्टार को मिलती हैं। इससे पहले चीन ने वर्ष 2008 में विश्व के अन्य स्थानों पर कार्यरत चीनी विशेषज्ञों को भर्ती करने का 'क्विनरेन जिहुआ' नामक कार्यक्रम शुरू किया था। इसमें अगले 5-10 साल में 2000 विशेषज्ञों को भर्ती करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

इस कार्यक्रम के तहत 1143 विशेषज्ञों की भर्तियां पहले हो चुकी हैं, लेकिन इसके बावजूद यह योजना 'विफल' होती प्रतीत हो रही है। 'साइंस' की रिपोर्ट इस सम्बंध में हो रही आलोचनाओं पर प्रकाश डालती है। आलोचना इस बात की हो रही है कि चीन विदेशों में बसे उन शोधकर्ताओं को आकर्षित करने का प्रयास कर रहा है जो पहले से ही सुस्थापित हैं, जबकि देश के शोधकर्ताओं को मदद देने की कोई ज़रूरत नहीं समझी जा रही है।

चीन द्वारा व्यापक तौर पर बर्बाद किए जा रहे संसाधनों पर एक पर्यवेक्षक कहते हैं, 'केवल कुछ प्रतिष्ठित लोगों को लुभाने की बजाय बेहतर यह होगा कि प्रतिभाओं की पूरी नई पीढ़ी पर निवेश किया जाए।' शंघाई के जाने-माने तंत्रिका विज्ञानी मू-मिंग पू ने 'क्विनरेन जिहुआ' को 'विफल' बताते हुए कहा है कि चीन की मौजूदा नीति के अनुसार जो सर्वश्रेष्ठ और प्रतिभाशाली है, वह अपने सबसे अच्छे उत्पादक साल विदेशों में खर्च करता है। ज़ाहिर है, विदेशों में कार्य कर रही प्रतिभाओं को आकर्षित करने की नई नीतियों ने शोध बिरादरी के बीच ही मतभेद खड़े कर दिए हैं। कई बार इस तरह के प्रोत्साहनों से वे लोग भी खिंचे चले आते हैं जिनकी कोई ज़रूरत नहीं है। विदेशों में रह रहे भारतीय वैज्ञानिकों को वापस देश बुलाने की योजना तैयार करते

समय चीनी अनुभवों का अध्ययन ज़रूर किया जाना चाहिए। इनमें हमारे लिए कई सबक छिपे हो सकते हैं।

हाल के वर्षों में उन युवा शोधकर्ताओं को आकर्षित और उनकी मदद करने के लिए कई नई योजनाएं शुरू की गई हैं जिन्होंने अपने कैरियर के लिए अकादमिक संस्थानों को चुना है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग की रामानुजन फेलोशिप और बायोटेक्नॉलॉजी विभाग की रामालिगास्वामी-डीबीटी वेलकम फेलोशिप खासकर नए शोधकर्ताओं को वेतन और शोध अनुदान दोनों तरह की मदद मुहैया करवाती हैं। वरिष्ठ वैज्ञानिकों को आकर्षित करने की योजना भी लागू की गई है। हाल ही में बायोटेक्नॉलॉजी विभाग द्वारा घोषित 'मार्गदर्शी फेलोशिप' विदेशों में बसे भारतीयों पर ही लक्षित है। निस्संदेह, अब हम ऐसी मंज़िल की ओर बढ़ रहे हैं, जहां मार्गदर्शन विदेशों से लौटने वाली नई खेप करेगी। बायोटेक्नॉलॉजी विभाग की इस योजना में 'वेलकम ट्रस्ट' भी भागीदार है जिसका पूरा ध्यान ब्रिटेन या अमरीका से वतन लौटने वाले भारतीयों पर रहता है।

लाख टके का सवाल यह है कि विशाल अनुसंधान अनुदान और फेलोशिप के साथ विदेशों से लौटने वाले वरिष्ठ भारतीय वैज्ञानिकों का असर क्या हमारे मौजूदा संस्थानों पर पड़ेगा जहां पहले से ही पर्याप्त संख्या में फैकल्टी मौजूद हैं? चीनी अनुभव तो यही कहता है कि इस तरह के कदमों से न केवल असंतोष फैलेगा, बल्कि इनकी घनघोर आलोचना भी होगी। हमें ज़रूरत तो ऐसी योजनाओं की है जो हमारे संस्थानों से निकल रहे पीएचडी धारकों को प्रोत्साहित करें। पीएचडी डिग्री धारक कई महिलाएं पोस्ट-डॉक्टरल के लिए विदेश में नहीं रह पाती हैं। क्या ऐसी व्यवस्था नहीं करनी चाहिए कि हम उनके अनुसंधान प्रयासों में मदद कर सकें? दुर्भाग्य से, अनुदान देने वाली एजेंसियां विदेशों में बसी प्रतिभाओं को आकर्षित करने की योजनाओं को हाथों-हाथ ले रही हैं, लेकिन स्थानीय प्रतिभाओं को प्रोत्साहित करने वाली पहल में बहुत कम रुचि दिखाई जा रही है। बाहर की ओर देखना भले ही आकर्षक और फैशनेबल लग सकता है, लेकिन भीतर झांकना न केवल ज़रूरी है, बल्कि वांछनीय भी है। (स्रोत फीचर्स)